RJPP, Vol. XVIII, No.II, 2020, ISSN (P) : 0976-3635, (e) :2454-3411, Impact Factor 7.721

जंग–ए–आजादी में कुमायूं का महत्व इतिहास की दृष्टि में

महिपाल सिंह कुटियाल

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बेरीनाग, पिथौरागढ़

Email: mahipalkutiyal@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 25.08.2020
Approved: 28.09.2020

महिपाल सिंह कुटियाल

जंग–ए–आजादी में कुमायूं का महत्व इतिहास की दृष्टि में

RJPP 2020,
Vol. XVIII, No. II,
pp.199-204
Article No. 24

Online available at *:*
https://anubooks.com/?page_id=6391

सारांश

आधुनिक भारत के इतिहास में 1857 की क्रांति का विशेष महत्व है क्यों कि इस जंग–ए–आजादी ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध "एक संगठित" नही तो असंगठित प्रयास अवश्य किया था। क्यों कि भारतीय अंग्रेजों की नीतियों से वहीं भारतीय सैनिक उनके दुर्व्यवहार से, किसान उनके शोषण की नीति से छुटकारा चाहते थे। इसलिए यह जंग–ए–आजादी का पहला विद्रोह 10 मई 1857 से लेकर 20 जून 1858 तक चला था। लेकिन इस युद्ध की समाप्ति तत्तकालीन वायसराय लार्ड कैनिंग ने 8 जुलाई 1858 ई0 में की थी। इस प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में कालीकुमांऊ ने भी ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध बगावत किया था। क्यों कि उस समय नैनीताल कुमांऊ कमिश्नर का मुख्यालय था और सर हैनरी रामजे ने इस विद्रोह की सूचना पाते ही कुमांऊ में शांति भंग की आशंका को देखते हुए कुमांऊ में मार्शल लॉ लागू किया था। इस जंग–ए–आजादी में कुमांऊ के योगदान को स्पष्ट किया गया है।

प्रस्तावना

यह सत्य है कि हम भारतीय हैं और भारत की स्वतंत्रता का प्रथम युद्व 'जंग– ए–आजादी'' की 150वीं वर्षगांठ मना चुके हैं । परंतु प्रश्न यह है कि ''क्यों इस युद्व में हजारों लोगों ने जान हथेली पर रख, बिना सर्वसम्मत नेताओं और बिना साजों सामान के विश्व पटल पर इतनी बडी लडाई लडी ? सिर्फ इसलिये कि देष आजाद हो गुलामी की जंजीर को तोडा जाय। इतिहास के अंतर्गत ऐसा युद्व न पहले लड़ा गया और ना ही अब कभी लड़ा जायेगा । भारत की आजादी की पहली जंग के बारे में अधिकतर जनता केवल इतना ही जानती है कि यह राईफलों में गाय और सुअर की चर्बी लगे होने की अफवाह से भड़की थी, लेकिन यह सच्चाई का एक कोना मात्र है, क्योंकि यह युद्ध किसानों और जवानों ने भी सैनिकों के साथ मिलकर लडा था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी में भारतीय सैनिकों की संख्या अंग्रेजी सैनिकों से अधिक थी और इन भारतीय सैनिकों को अंग्रेजी सरकार से शिकायत थीं, क्योंकि अंग्रेजी सैनिको को भारतीय सैनिको से अधिक वेतन दिया जाता था वहीं भारतीय सेनिक को प्रोन्नति के अवसर भी कम दिये गये थे । अंग्रेजी अधिकारी भी इन भारतीय सैनिकों के साथ अभद्र व्यवहार करते थे । यदि कोई भारतीय सैनिक अपनी योग्यता और क्षमता के कारण ख्याति अर्जित करता तो उसे सेना से निकाल दिया जाता था। अतः स्पष्ट है कि भारतीय सेनिकों में असंतुष्टता व्याप्त थी। दूसरी तरफ अंग्रेजों ने बिना किसी कारण अवध का विलय अंग्रेजी साम्राज्य में कर दिया, तब सैनिकों का असंतोष ओर अधिक बढ़ गया। इस स्थिति को देखते हुए सर हेनरी लारेंन्स ने कहा ''यदि असंतुष्ट सैनिकों के साथ न्याय नहीं किया गया तो वे इस समस्या का समाधान विद्रोह करके करेंगें''।

इसी समय लार्ड केनिंग ने एक कानून पास करके भारतीय सैनिकों को समुद्र पार विदेशों में बिना अतिरिक्त वेतन के लडने के लिये भेजा, हिंदू सैनिक अपनी धार्मिक भावनाओं के कारण युद्ध में जाने के इच्छुक नहीं थे। वहीं अंग्रेजो को भारतीय बैरकपुर और बंगाल के सैनिकों ने वर्मा (म्यांमार) और सिंध में बिना अतिरिक्त भत्ते के जाने से इंकार किया तो अंग्रेजी सरकार ने भारतीय सेनिकों पर विश्वासघात का आरोप लगाया । इस प्रकार के व्यवहार से सैनिक व असैनिक वर्ग असन्तुष्ट हुए । इस तनावपूर्ण वातावरण में सिपाहियों को चर्बीयुक्त कारतूस चलानें के लिये जिन्हें दांतों से तोडकर चलाना पडता था जिन पर गाय और सुअर की चर्बी लगे होंने की बात फैली जिससे सैनिक भड़क गये। इतिहासकारों ने यह भी कहा कि यदि 1857 में चर्बी वाले कारतूस की घटना नहीं होती तो शायद यह क्रांति नहीं होती परंतु यह भी सच है कि 29 मई 1857 को भारतीय सैनिकों ने चर्बीयुक्त कारतूस के प्रयोग को इन्कार करने से हुआ। अंग्रेज प्रशासनिक अधिकारियों व इतिहासकारों का मानना है कि वास्तव में यह छोटी सी घटना मात्र थी। बदांयुँ के तत्कालीन अधिकारी एडवडर्स ने लिखा ''मुझे ये कहने में कोई संकोच नहीं है कि सिपाहियों में अधिकतर लोग कारतूसों के प्रयोग के कारण रुष्ट हो गये थे।'' यह केवल तत्कालिक कारण मात्र था। इस संदर्भ में सर्वप्रथम क्रांतिकारी नेता विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी पुस्तक में इस विद्रोह को प्रथम स्वतंत्रता संग्राम माना और उनके अनुसार इस विद्रोह का उदेश्य स्वराज्य प्राप्त करना था । इसी प्रकार के विचार अशोक मेहता ने भी व्यक्त किया । उनका मानना

था कि अवश्य इस विद्रोह में सैनिकों ने भाग लिया परन्तु सेना के साथ बहुत बडी संख्या में भारतीय नागरिकों , किसानों ने भी भाग लिया। इस तथ्य की पुष्टि 1857 ई० के जुलाई माह में प्रकाशित ''फेताह इस्लाम'' में कहा गया है कि प्रत्येक नगर के लोगों को चाहिए कि वे अपने नगर के लिये एक नेता बनाकर अंग्रेजों के साथ युद्ध करें, हो सके तो अलग अलग नगर एक साथ अंग्रेजों के साथ युद्ध करें जिससे उन्हें एकत्र होने का अवसर ना मिल सके। इस युद्ध में आम जनताओं ने भी भाग लिया था । वहीं डॉ एस.एन. सेन की पुस्तक ''एट्टीन फिफ्टी सेवन'' में लिखा है कि 1857 के आंदोलन में भारतीय राजनितिक, सेनिकों, किसानों और आम जनता ने भाग लिया था। अंग्रेजों को 1857 की क्रांति से इतनी अधिक चिढ हो गयी कि उन्होंने न केवल भारतीय को इस पर लिखने पर प्रतिबन्ध लगाया अपितु 1857 के शहीदों के नाम पर अपनी संतानों के नाम रखने पर भी प्रतिबंध लगाया था । इससे यह आंकलन लगाया जा सकता है, कि भारत यद्यपि 1857 का जंग हारा था, परंतु अंग्रेजों को इस जंग– ए– आजादी से यह स्पष्ट हो चुका था कि भारतीय अब स्वतंत्रता की लालसा और जीत के विचारों को स्थायी रूप से प्राप्त करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके हैं। अंग्रेज अधिकारी हडसन ने कहा की "भारतीय सेना जिस योग्यता, कुशलता, हिम्मत से हमसे मुकाबला किया, वह हमारी सोच से बाहर थी" । इतिहासकार जॉन विलियम ने अपनी पुस्तक "सिपाय वार इन इण्डिया" में भारतीय सैनिकों के जज्बे और स्वतंत्रता की लालसा की प्रशन्सा करते हुए लिखा कि "सच तो यह है कि कुछ हिंदुस्तानी समर्थकों के कारण हम युद्ध जीत पाये हैं। "वास्तव में इस जंग–ए– आजादी में भारतीय सैनिकों की बहादुरी, हिम्मत, काबिले तारीफ थी। इतिहासकार क्रेव ब्राउन ने अपनी पुस्तक" Panjab And Delhi in 1857 " में इसी प्रकार का उल्लेख किया है । 1857 के युद्व के विषय में विलियम रसल ने भी लंदन में छपने वाले अखबार The Times में इस युद्ध की रिपोर्ट में लिखा कि "पटियाला और जींद के राजाओं के सहयोग से तथा सिक्ख सैनिकों के सहायता से हमने दिल्ली और अन्य नगरों पर अधिकार किया"। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय इस युद्व में अपनी स्वतंत्रता के लिये कितने लालायित थे।

अतः इससे स्पष्ट है कि कुछ षड़यंत्रकारी, दलालों और राजवाड़े तथा जमीदारों की मिलीभगत, षड़यंत्र के कारण 1857 की जंग–ए–आजादी में भारतीय सैनिक व किसान पराजित हुए । वहीं 1857 की क्रांति के 50 साल बाद विनायक दामोदर सावरकर की "फस्ट वार ऑफ इण्डियन इनडिपेंडेस" पहली पुस्तक थी, जिसमें इस युद्ध को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम कहा। अंग्रेज इतिहासकार व खुद कांग्रेस सावरकर की पुस्तक के निष्कर्षों से सहमत नही थे। इसका एक कारण यह हो सकता है कि यह किताब तब आयी जब बंगाल का बिभाजन हो चुका था। हिंदू और मुस्लिम के बीच साम्प्रदायिकता आ चुकी थी। यदि 1857 की क्रांति नहीं हुयी होती तो हमारा वर्तमान अतीत से कुछ अलग नहीं होता। अगर कहा जाय कि यह अपने अपने हितों के लिये लड़ा गया एक धार्मिक संग्राम था तो भी गलत नहीं होगा । क्योंकि कुछ रजवाड़ो ने अपने स्वार्थ के लिये देश को अंग्रेजों के हवाले कर दिया, वास्तव में देखा जाय तो यह युद्ध केवल धर्मांध सिपाहियों की धार्मिक असहिश्णुता का विस्फोट ही नहीं था अपितु जवानों के साथ साथ

किसानों का भी जंग–ए– आजादी था। क्योंकि ब्रिटिश सरकार की राजनितिक, आर्थिक, प्रशासनिक एवम् धार्मिक नीतियों ने भारतीय जनमानस को मनोवैज्ञानिक रूप से उत्तेजित किया था।

जहाँ 1857 के विद्रोह ने समूचे उत्तरी भारत को तेजी से अपने आगोश में ले लिया था, उसकी तुलना में कुमाँऊ मण्डल अपेक्षाकृत कुछ नरम था । जहाँ पश्चिमी भारत व अंतिम मुगल बादशाह 1857 के अशांति काल में थे, वहीं कुछ इतिहासकारों ने कुमांऊ के नरम स्वभाव का श्रेय कुमांऊ के तत्कालीन कमिश्नर हेनरी रामजे को दिया । जब 1857 का विद्रोह प्रारम्भ हुआ तो उस समय 22 मई 1857 को हेनरी रामजे गढ़वाल के दौरे पर थे, विद्रोह की सूचना मिलते ही अल्मोड़ा फिर नैनीताल आ गये । उत्तराखंड में इस्ट इंण्डिया कम्पनी का आगमन 1815 में हुआ। इससे पहले यहाँ नेपाली गोरखों का शासन था, यह भी माना जाता है कि गोरखा शासकों द्वारा किये अत्याचार के कारण अंग्रेजों का ध्यान कुमांऊ की ओर गया लेकिन अंग्रेजों और गोरखा के बीच युद्ध के अन्य कारण भी रहे। अल्मोड़ा में 27 अप्रैल 1815 को गोरखा प्रतिनिधि बमशाह और लेफ्टिनेंट कर्नल गार्डनर के बीच हुई एक संधि के बाद नेपाली शासक ने इस क्षेत्र से हट जाने का निर्णय लिया और 4 अप्रैल 1816 को सुगौली की संधि से अंग्रेजों का अधिकार कुमांऊ में हो गया ।1856 का दौर ब्रिटिश हुकूमत का उत्तराखण्ड में शक्तिशाली होने की ओर था, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने लकड़ी की तस्करी के साथ– साथ मंदिरों–मठों को लूटा , और हर धार्मिक प्रतिष्ठान पर कर लगाया तथा उत्तराखण्ड के पहाड़ियों में सात गुना कर लगाया। कर वसूली को अंग्रेजों ने सबसे पहले अल्मोड़ा से शुरु किया था वहीं जंगली जानवरों और दुर्लभ पौधों की तस्करी व मंदिरों पर भी कर लगाया। इस नीति के विरुद्ध 1887 में 'विनोद' अखबार ने अल्मोड़ा से आवाज उठाई। 'दु–गड्डा खबर' ने कोटद्वार से तथा लोक आवाज ने देहरादून से आवाज उठाई, साथ ही "उत्तरभारत" "स्वर्गभूमि" "गढ़प्रकाशन""कर्मभूमि जैसे अखबारों ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्व आवाज उठाई थी ।

1857 की क्रांति की लपटें बरेली, रुहेलखण्ड तक आने से कुमांऊ का क्षेत्र भी इसमें शामिल हो गया,ऐसी स्थिति में कुमांऊ के स्थानीय बंजारों ने स्वाधीनता संग्राम के सैनिकों से सहानूभूति दर्शाते हुए रुद्रपुर के आसपास आने जाने पर प्रतिबंध लगा दिया । जून 1857 तक बरेली– मुरादाबाद से आये अंग्रेज ऑफिसरों को सपरिवार हल्द्वानी, कालाढुंगी और सुरक्षा की दृष्टि से नैनीताल में शरण दिया । खान बहादुर खान ने बरेली क्षेत्र में क्रांति की बागडोर सम्भाली, क्रांति को प्रसारित करने के लिए मस्तखान के नेतृत्व में रामपुर के आसपास विद्रोह किया उन्होंने ब्रिटिश सैनिकों को कोटा में पराजित कर ब्रिटिश सेना नायक धन सिंह को मार डाला, इस स्थिति को देखते हुए हेनरी रामजे ने मार्शल ला लागू कर दिया अब पहाड का सम्पर्क देश के अन्य भागों से कट गया, अंग्रेजों को सामान ढोने हेतु कुली मिलने भी बंद हो गये थे, उस समय खान बहादुर खान जो रुहेलखण्ड का नबाब था, ने काले खॉ के नेतृत्व में 27 सितम्बर 1857 को 3000 पैदल ओर धुड़सवार सैनिकों को नैनीताल पर अधिकार करने के लिये भेजा जिन्होंने हल्द्वानी पर अपना अधिकार कर लिया वहीं अंग्रेज कप्तान मैक्सवेल ओर लैप्टनन चैपमैन के नेतृत्व में गोरखा

फौज तथा मिस्टर बैचर के नेतृत्व में धुड़सवार सेना भी इन क्रांतिकारियों को भगाने में असफल रहे परन्तु अंग्रेज अधिकारी पुनः हल्द्वानी में अधिकार के लिये ग्रीवज एवम मि० रीड़ के नेतृत्व मे अंग्रेजी सेना ने काले खॉ को पराजित कर हल्द्वानी पर अधिकार कर लिया । परंतु खान बहादुर खान विचलित नही हुए उसने पुनः एक शक्तिशाली सेना का गठन कर फजल हक के नेतृत्व में अंग्रेजो से युद्ध के लिये भेजा ओर हल्द्वानी पर अधिकार कर लिया, उस समय की स्थिति को देखते हुए और पहाडों पर शासन की आवश्यकता और कमी के कारण तत्कालीन कमिश्नर रामजे ने कुटनीति का सहारा लिया । जिस कारण सेना बरेली वापस लोट गयी ।

1857 की क्रांति की एक महत्वपूर्ण घटना यह थी कि उस समय अवध का नबाब बाजिद अली शाह था उसने काली कुमांऊ के थुवा माहरा गाँव के प्रधान और कुमांऊ के नेता कालू सिहं महरा को एक खत लिखकर युद्ध के लिये एक फौज तैयार करने को कहा साथ ही सेना के खर्च व पूर्ण सेना और आर्थिक सहायता देने का वचन दिया तो कालू महरा ने महर फर्त्याल, आनंद सिंह, बिशन सिंह के साथ मिलकर सेना तैयार की परंतु अल्प समय में ही यह सेना अंग्रेज सेना से पराजित हो गये । हेनरी रामजे की सेना ने कालू महरा, आनन्द सिंह, बिशन सिंह को औनाखेडा मे बंदी बना लिया और आनंद सिंह फर्त्याल, बिशन सिंह कठयत की अंग्रेजों ने हत्या कर दी। वहीं कालू महरा ओर अन्य सैनिको को कारागार में डाल दिया गया । लेकिन यह भी सत्य है कि अंग्रेज काली कुमांऊ की सेना से भयभीत होने लगे थे । अंग्रेजों ने काली कुमांऊ की शक्ति को 1857 में दबाने के लिये कुमांऊ में मार्शल लॉ लागू किया। यदि सेना ने विद्रोह किया तो उनके शस्त्र छिनकर नैनीताल के ठण्डी सड़क से राजभवन को जाने वाले स्थल पर इन विद्रोहियों को मौत के घाट उतार दिया गया । यह स्थान आज भी 'फांसी गधेरा' के नाम से जाना जाता है । दूसरी तरफ अंग्रेजों का साथ देने वाले माधो सिंह, नरसिंह, खुशाल सिंह जुआल को बरेली और पीलीभीत की जागीरें प्रदान की गयी, कालांतर में कालू महरा की हत्या कारागार में गोली मारकर कर दी गई । हेनरी रामजे के कुटनीति के कारण 1857 का विद्रोह का प्रसार कुमांऊ में अधिक नहीं हुवा।

1858 में भारत का शासन कम्पनी सरकार से जाता रहा क्योंकि 1857 की क्रांति से स्पष्ट हो चुका था कि कम्पनी भारतीय लोगों पर अत्याचार , शोषण, के साथ– साथ अंग्रेज अधिकारी अपने लाभ के लिये व्यापार करने लगे, इसलिये ब्रिटिश क्राउन ने कम्पनी से शासन को छीनकर ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथो में ले लिया इसलिये 1858 का अधिनियम पारित किया गया।

यद्यपि 1857 का विद्रोह पहाड़ी इलाकों में कुछ षांत रहा , परंतु 20 वीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुए कुली बेगार आंदोलन में विद्रोह पुनः फूट पड़ा । कुमांऊ के अल्पकालिक 1857 के विद्रोह के बाद यह कुली बेगार अंग्रेजो के विरुद्ध जनता प्रतिरोध वाला विद्रोह था जो 1913 में अल्मोड़ा, 1921 में पिथौरागढ़ दोनों ही स्थानों पर इस आंदोलन का नेतृत्व बद्रीदत्त पाण्डे ने किया था । अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध 1921 में बागेश्वर में लगने वाले मकर संक्रांति के मेले में सरयू तट पर अंग्रेजों की यह कुली बेगार प्रथा 1873 का अंत अंग्रेजी सरकारी दस्तावेज के रजिस्टर को प्रवाहित करके किया । इसी आंदोलन के कारण बद्रीदत्त पाण्डे को कुमांयू केसरी की उपाधि दी गयी।

1857 की क्रांति के बाद कुमांऊ के इस कुली बेगार आंदोलन के जन प्रतिरोध को देखकर महात्मा गांधी ने कहा ' यह 1857 की क्रांति का ही एक भाग है, जो एक प्रभावपूर्ण और रक्तहीन क्रांति थी'' ।

सन 1857 का जंग–ए–आजादी में कुमांऊ के पहाडी क्षेत्र पर इसका कोई अधिक प्रभाव नही पडा परंतु इस युद्व में कालू महरा, आनंद सिंह फर्त्याल, बिशन सिंह कठायत, बद्रीदत्त पाण्डे, गौरी दत्त पाण्डे, मोहन सिंह मेहता, नर बहादुर राणा, गजेधले, हरिकृष्ण पाण्डे आदि ने जंग ए–आजादी व उत्तराखण्ड़ को अपना विशिष्ट महत्व दिया । इस तरह कुमांऊ भी 1857 के क्रान्ति के दौरान भारत के शेष भागों की तरह विद्रोह की लपटों से अछुता नहीं रहा । यह सच है कि देश के अन्य भागों के समान यहाँ का क्षेत्र अपेक्षाकृत कुछ शांत रहा, लेकिन 1857 का विद्रोह कुमांऊ मे भी हुआ, परंतु यह अल्पकालिक रहा ।

संदर्भ ग्रंथ

1 डॉ के०एल०खुराना, *भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा (2006) पृ0 **16**,
2 वहीं पृ0 **17**
3 डॉ ए० के०मित्तल, *भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास*, साहित्य भवन पब्लिकेशन (2013) पृ0 **8,**
4 वहीं पृ0 **10** और **20**
5 In India war of Indepence p.–**7**
6 Ashok Mehta 1857—*The great Rebellion* P.–**23**
7 तारा चंद, *भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास*, भाग–2 , पृ0 **36**
8 धनश्याम जोशी, *उत्तराखंड़ का राजनीतिक,* सामाजिक, एवम सांस्कृतिक इतिहास, प्रकाश बुक डिपो, बरेली (2003) पृ0 **119**
9 वैष्णव, यमुना दत्त, *कुमांऊ का इतिहास*, मार्ड़न बुक स्टोर्स , नैनीताल, (1977), पेज 251, पृ0 **252**